RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-02
Issue-07
July-2017

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com

अन्तर्जातीय विवाह की सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि : भारतीय समाज के विशेष संदर्भ में

डॉ बलवीर सेन

सह–आचार्य (समाजशास्त्र) राजकीय महाविद्यालय, मेड़ता सिटी, नागौर (राज0)

ARTICLE DETAILS

Article History
Received: 30 May 2017
Accepted: 15 June 2017
Published Online: 15 July 2017

Keywords
विवाह, भारत अन्तर्जातीय

ABSTRACT

''अन्तर्जातीय विवाह'' के अन्तर्गत विवाह तथा जाति दो मूलभूत संस्थाएं आपस में जुड़ी हुई है तथा ये दोनों संस्थाएं भारतीय समाज की आधारशिला है इसलिए इन दोनों का अध्ययन आवश्यक है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था का संस्तरणात्मक क्रम ''वर्ण'' पर आधारित रहा है। कालान्तर में इसका स्थान जाति व्यवस्था ने ले लिया। जाति व्यवस्था हिन्दू सामाजिक संरचना का एक प्रमुख आधार रहा है जिसने हिन्दुओं के सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक एवं सांस्कृतिक जीवन को अपने रूपों में प्रभावित किया है।

शोध विस्तार– भारतीय समाज को एक जातिगत समाज के नाम से पुकारा जा सकता है। जाति भारतीय समाज की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण संस्था हैं। हजारों वर्षों से जाति व्यवस्था अपने विभिन्न विधिक निषेधों के द्वारा भारतीय जीवन को प्रभावित करती है। आज जब परिवर्तनकारी शक्तियों के प्रभाव से लोग इसे एक अलौकिक व्यवस्था के रूप में मानने को तैयार नहीं है, तो इसने भी अपने स्वरूप में परिवर्तन कर लिया है। आज यह व्यक्तिगत एवं राजनीतिक स्वार्थो की पूर्ति का साधन बनकर अपने अस्तित्व को बनाये हुए है।[1]

प्रारम्भ में जाति प्रणाली अधिक जटिल नहीं थी समय के साथ–साथ इसके स्वरूप में परिवर्तन हुआ और आज यह प्रणाली अत्यधिक जटिल हो गई है। इसका अध्ययन समय–समय पर इतिहासकारों, मानवशास्त्रियों, जनगणना आयुक्तों तथा अंग्रेज मिशनरियों ने किया और अपने–अपने दृष्टिकोण से इसकी महत्ता को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया जाति प्रणाली के अन्तर्गत विवाह सम्बन्धी अनेक प्रतिबन्ध पाये जाते है जिनमें अन्तर्विवाह का नियम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यहाँ प्रत्येक जाति अनेक उपजातियों में विभाजित है। और प्रत्येक उपजाति के लोग अपनी ही उपजाति में विवाह कर सकते है। इस प्रकार उपजाति अन्तर्विवाह का कठोर नियम प्रचलित है। कोई भी व्यक्ति सामान्यतः अपनी उपजाति से बाहर विवाह संबंध स्थापित नहीं कर सकता है। इस प्रकार जीवन साथी के चुनाव की दृष्टि से हिन्दू समाज असंख्य छोटे–छोटे वैवाहिक समूहों में बँटा हुआ है। वैदिक तथा उत्तर वैदिक काल के धर्म ग्रन्थों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उस समय सब द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) का एक ही वैवाहिक समूह था अर्थात् इन तीन वर्णों के लोग आपस में विवाह कर सकते थे। इसका कारण यह था कि ये तीनों वर्ण (द्विज) इण्डो आर्यन प्रजाति के ही थे और इनमें प्रजातीय तथा सांस्कृतिक दृष्टि से समानता थी। उस समय केवल शुद्र वर्ण ही एक पृथक समूह माना जाता था। स्मृतिकाल में यद्यपि प्रारम्भ में अर्न्तवर्ण विवाहों की आज्ञा थी, परन्तु जैसे–जैसे प्रत्येक वर्ण अनेक जातियों और उपजातियों में विभक्त होता गया। जीवन साथी के चुनाव का क्षेत्र भी सीमित होने लगा और लोग अपनी ही जाति में विवाह करने लगे। वर्तमान समय में साधारणतः व्यक्ति को अपनी ही प्रजाति, जाति उपजाति धर्म क्षेत्र और सामाजिक वर्ग में विवाह स्थापित करने की आज्ञा दी जाती है।[2]

अन्तर्विवाह के अनेक प्रजातीय और सांस्कृतिक कारण रहे हैं। भारत में समय–समय पर कई प्रजातीय समूह आए और उन्हें किसी न किसी वर्ण की सदस्यता प्राप्त हो गई। ऐसी दशा में प्रजातीय मिश्रण को रोकने के लिए अर्न्तवर्ण विवाहों पर प्रतिबन्ध लगाए गए और अन्तर्विवाह की नीति अपनायी गई। लोग अपने ही समूह में वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने लगे, विशेषतः आर्य और द्रविड़ प्रजाती के बीच रक्त के मिश्रण को रोकने के लिए ऐसा किया गया। विभिन्न प्रजातीयों में सांस्कृतिक दृष्टि से भी काफी भिन्नता पाई जाती थी। यह सांस्कृतिक भिन्नता, विभिन्न वर्णों अथवा जातियों के बीच वैवाहिक सम्बन्धों में कठिनाई पैदा करती थी। इस कारण, प्रत्येक व्यक्ति अपने समूह में ही विवाह करने लगा और अन्तर्विवाही समूह दृढ़ होने लगे। धीरे–धीरे कर्म के स्थान पर जन्म को अधिक बल दिया जाने लगा। पहले कर्म के आधार पर व्यक्ति की श्रेष्ठता आँकी जाती थी परन्तु बाद में कर्म का स्थान जन्म ने ले लिया और जन्म अर्थात, रक्त की शुद्धता बनाए रखने के लिए अन्तर्विवाह पर अधिक जोर दिया गया। अन्तर्विवाह के सिद्धान्त का हिन्दू समाज में कठोरता से पालन हो रहा है। अपनी जाति के बाहर विवाह करने वालों को अभी तक जाति से बहिष्कृत किया जाता रहा है। वेस्टनमार्क (1903) के अनुसार, ''अन्तर्विवाह जाति व्यवस्था का सार तत्व है और किसी भी सदस्य द्वारा इस नियम का उल्लंघन करना एक सामाजिक अपराध समझा जाता है।'' वर्तमान में शिक्षा एवं पाश्चात्य सभ्यता के प्रसार, औद्योगीकरण एवं नगरीकरण की तीव्र प्रक्रिया, आवागमन और संचार साधनों के विकास तथा एकाकी परिवारों की स्थापना के परिणाम स्वरूप अन्तर्विवाह के प्रतिबन्ध कमजोर पडते जा रहे हैं। और लोगों का अन्तर्जातीय विवाहों की ओर झुकाव बढ़ता जा रहा है।[3]

© RRIJM 2015, All Rights Reserved

भारतीय समाज में जहाँ एक ओर अन्तर्विवाह का प्राविधान है वही दूसरी तरफ बहिर्विवाह का नियम भी प्रचलित है। हिन्दूओं में बहिर्विवाह के तीन प्रमुख आधार स्तम्भ है प्रथम, गोत्र बहिर्विवाह द्वितीय सप्रवर बहिर्विवाह तथा तृतीय सपिण्ड बहिर्विवाह।

गोत्र बहिर्विवाह– गोत्र बहिर्विवाह का तात्पर्य है अपने गोत्र के बाहर विवाह करना हिन्दू समाज में सगोत्र विवाह वर्जित है अर्थात व्यक्ति को अपने ही गोत्र के लोगों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने की आज्ञा नहीं है। डॉ० अल्तेकर (1962–73) के अनुसार, ''ईसा के 600 वर्ष पूर्व सगोत्र विवाह पर निषेध नहीं था।'' सगोत्र विवाह पर निषेध को समझने के लिए यह आवश्यक है कि गोत्र शब्द का अर्थ भलि–भाँति समझ लिया जाए। साधारणतः गोत्र का अर्थ उन व्यक्तियों के समूह से लगाया जाता है, जिनकी उत्पत्ति एक ही ऋषि– पूर्वज से हुई हो। विश्वामित्र, जमदग्नि, भारद्वाज, गौतम, अत्रि, वशिष्ट, कश्यप और अगस्त नामक आठ ऋषियों की सन्तानों को गोत्र के नाम से पुकारा गया। धीरे–धीरे जनसंख्या के बढ़ने से गोत्रो की संख्या बढ़ती गई। वैदिक काल से ईसा के 600 वर्ष पूर्व तक भारत में सगोत्र विवाह सम्बन्धी निषेध नहीं पाये जाते थे। डॉ० कपाड़िया (1958:127) के अनुसार मनु ने सगोत्र विवाह को गम्भीर अथवा लघु पाप नहीं माना।'' सबसे पहले गृह्यसूत्र साहित्य में बताया गया कि कोई भी मनुष्य अपने गोत्र वाली कन्या से विवाह नहीं करेगा। सामान्यतः ऐसे प्रतिबन्धों के लगाये जाने का मुख्य कारण रक्त सम्बन्धियों के बीच यौन सम्बन्धों की आशंका को दूर करना ही था।[4]

सप्रवर बहिर्विवाह– गोत्र से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित एक अन्य अवधारणा 'प्रवर' की है। प्रवर का अर्थ आह्वान करना है। कपाड़िया (1958:128) के अनुसार ''प्रवर संस्कार अथवा ज्ञान के उस सम्प्रदाय की ओर संकेत करता है जिससे एक व्यक्ति सम्बन्धित होता है।'' वैदिक युग में पुरोहित अग्नि प्रज्जवलित करते समय अपने प्रसिद्ध ऋषि पूर्वजों के नामों का आरम्भ करते होंगें। प्रवर से एक पुरोहित के ऋषि पूर्वजो का आभास होता है। धीरे–धीरे उन पुरोहितों के यजमानों ने भी इन प्रवरों को स्वीकार कर लिया तथा उन्होंने अपने पुरोहित के प्रवर में विवाह सम्बन्ध स्थापित करना स्थगित कर दिया। वास्तव में प्रवरों का विचार मुख्य रूप से ब्रह्मणों में ही पाया जाता है।

सपिण्ड बहिर्विवाह– जहाँ सगोत्र एवं प्रवर बहिर्विवाह के प्रतिबन्ध पितृपक्ष के सम्बन्धियो को आपस में विवाह करने की आज्ञा नहीं देते यहाँ सपिण्ड बहिर्विवाह के निषेध मनु के अनुसार मातृपक्ष की लड़कियों के साथ ही वैवाहिक सम्बन्धों की आज्ञा नहीं देते। सपिण्ड कर अर्थ है समान पिण्ड या देह वाला। वे सब व्यक्ति जिनमें एक ही सामान्य स्त्री–पुरुष का रक्त हो, सपिण्ड कहलाते हैं। हिन्दू धर्मशास्त्रों के अनुसार सपिण्ड विवाह वर्जित हैं। सपिण्डता का सम्बन्ध पिता की ओर सात पीढ़ियों तक तथा माता की ओर पाँच पीढ़ियों तक माना जाता है और इसके अन्तर्गत आने वाले व्यक्तियों में आपस में वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सकता।[5]

अनुलोम विवाह– जब निम्न वर्ण, जाति, उपजाति अथवा कुल की लड़की का विवाह उसी के समान अथवा उससे उच्च वर्ण, जाति, उपजाति या कुल में किया जाये, तो ऐसे विवाहों को अनुलोम विवाह कहते हैं। ऐसे विवाह में एक पुरुष अपने स्वंय के वर्ण अथवा जाति या अपने से नीचे वाले वर्ण अथवा जाति की लड़की के साथ विवाह कर सकता है। परन्तु स्वयं अपनी लड़की का विवाह अपने से नीची जाति या वर्ण वाले व्यक्ति के साथ नहीं कर सकता। इस प्रकार के विवाह में साधारणतः स्त्री की तुलना में पुरूष का वर्ण अथवा जाति उच्च होती है। जब एक ब्राह्मण लड़के का विवाह क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र की लड़की से होता है तो यह अनुलोम विवाह होता है। (याज्ञवल्क्य स्मृति 37) में याज्ञवल्क्य ने कहा है कि ब्राह्मण चार विवाह कर सकता है–एक विवाह अपने वर्ण की लड़की से और एक–एक शेष तीन वर्णों की लड़कियों से क्षत्रिय तीन विवाह कर सकता है एक अपने वर्ण की लड़की से और एक–एक वैश्य और शूद्र वर्ण की लड़कियो से, वैश्य दो विवाह कर सकता है–एक अपने वर्ण की लड़की से और एक शूद्र की लड़की से तथा शूद्र केवल एक विवाह अपने ही वर्ण की लड़की से कर सकता है। कुछ विद्वानों की यह मान्यता रही है कि द्विजों को शूद्रों के साथ वैवाहिक सम्बंध स्थापित नहीं करना चाहिए। (महाभारत अनुशासन पर्व, 44) में लिखा है कि ब्राह्मण तीन वर्ण की कन्या से क्षत्रिय दो वर्ण की कन्या से तथा वैश्य अपने ही वर्ण की कन्या से विवाह करे, उनसे जो सन्तति होती है, वह हितकारी होती है।

डॉ. राधाकृष्णनन (1956:173) के अनुसार भारत में अनुलोम विवाहों का प्रचलन सम्भवतः दसवीं शताब्दी तक रहा। इसके पश्चात ऐसे विवाहों को समाप्त कर दिया गया। वर्तमान में अनुलोम–नियम केवल एक सिद्धान्त के रूप में है। आज करीब–करीब सभी लोग अपनी–अपनी उपजाति में ही विवाह करते हैं।[6]

प्रतिलोम विवाह– प्रतिलोम विवाह का तात्पर्य है उच्च कुल, जाति अथवा वर्ण की लड़की का निम्न कुल, या वर्ण के लड़के से विवाह कपाड़िया (1958:107) ने लिखा है–''एक निम्न वर्ण के व्यक्ति का उच्च वर्ण की स्त्री के साथ विवाह प्रतिलोम विवाह कहलाता था और इसकी घोर निन्दा होती थी।'' ऐसे विवाह में लड़की का कुल जाति या वर्ण लड़के से उच्च होता है। ब्राह्मण लड़की का क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र लड़के से विवाह प्रतिलोम विवाह के अन्तर्गत आता है।

ऐसे विवाहो के बाद स्त्री की स्थिति निम्न हो जाती है और पुरूष की स्थिति में कोई अन्तर नहीं आता। हिन्दू धर्मशात्रों में ऐसे विवाह अवैध माने गए है और स्मृतिकारों ने इसकी घोर निन्दा की है। विशेष रूप से ब्राह्मण लड़की का शूद्र पुरूष के साथ विवाह को अति निकृष्ट बताया गया है। हिन्दू समाज में कुछ मात्रा में प्रतिलोम विवाह सदैव प्रचलित रहें है, परन्तु ऐसे

© RRIJM 2015, All Rights Reserved

विवाहों को अनुचित समझा जाता था और इनसे उत्पन्न सन्तान को ''चाण्डाल'' की श्रेणी में रखा जाता था। हिन्दू समाज में 1949 के हिन्दू विवाह वैधता अधिनियम के बनने से अनुलोम और प्रतिलोम दोनों ही प्रकार के विवाहों को वैध मान लिया गया है।[7]

निष्कर्ष– विवाह एक सर्वव्यापी संस्था है। हिन्दू सामाजिक जीवन में विवाह का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। हिन्दू जीवन के अन्तर्गत विवाह सभी संस्कारो में प्रमुख ही नहीं है बल्कि यह त्याग और भोग का अदभुत समन्वय है। चूँकि हिन्दू विवाह एक सामाजिक संस्था है इसलिए सामाजिक संस्था के आवश्यक तत्व इसमें भी विद्यमान है। एक सामाजिक संस्था के आवश्यक तत्व धारणा उद्देश्य, सामाजिक ढाँचा अभिमत एवं अधिकार तथा प्रतीक होते है। हिन्दू विवाह की धारणा लिंग सम्बन्धों के नियन्त्रण पर आधारित है। स्त्री पुरूष किस प्रकार से कामाग्नि को धार्मिक रीति से सन्तुष्ट कर सकते है, यह हिन्दू विवाह की आधारशिला है। यह न केवल सामाजिक सम्बन्धों की आधारशिला है बल्कि धार्मिक पृष्ठभूमि पर भी विवाह हिन्दुओं का महत्वपूर्ण धार्मिक संस्कार माना जाता है।

संदर्भ–

1. Kanan, C.T : "Inter Caste and Inter Community Marriage in India", Bombay Allied publishers private Ltd. 1963.
2. Kapur, Premilla : "Marrigage and Working Women in India New Delhi, Vikas publication, 1970, p. 57
3. Hallen, G.C. : "Attitude of Educated youth Towards Marriage" Social Welfage vol. xii. No.11 Feb. 1966
4. Ross, Aileen D. : "The Hindu Family its Urban Setting, Bombay, oxford university press, 1961, p. 276
5. Hallen G.C. : Op, cit, 8
6. Hate, C.A. : "Changing Status of women in post Independence India, Bombay Allied publishers private Limited, 1969.
7. Kanan C.A. : Op, cit; p. 70.

© RRIJM 2015, All Rights Reserved